प्रेमचंद

क्रम

एक ऑंच की कसर:		3
माता का ह्रदय	:	9
परीक्षा	:	18
तेंतर	:	22
नैराश्य	:	30

एक आंच की कस र

सारे नगर में महाशय यशोदानन्द का बखान हो रहा था। नगर ही में नही, समस्त प्रान्त में उनकी कीर्ति की जाती थी, समाचार पत्रों में टिप्पणियां हो रही थी, मित्रो से प्रशंसापूर्ण पत्रों का तांता लगा हुआ था। समाज-सेवा इसको कहते है ! उन्नत विचार के लोग ऐसा ही करते है। महाशय जी ने शिक्षित समुदाय का मुख उज्जवल कर दिया। अब कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि हमारे नेता केवल बात के धनी है, काम के धनी नही है ! महाशय जी चाहते तो अपने पुत्र के लिए उन्हें कम से कम बीज हतार रूपये दहेज में मिलते, उस पर खुशामद घाते में ! मगर लाला साहब ने सिद्वांत के सामने धन की रत्ती बराबर परवा न की और अपने पुत्र का विवाह बिना एक पाई दहेज लिए स्वीकार किया। वाह ! वाह ! हिम्मत हो तो ऐसी हो, सिद्वांत प्रेम हो तो ऐसा हो, आदर्श-पालन हो तो ऐसा हो । वाह रे सच्चे वीर, अपनी माता के सच्चे सपूत, तूने वह कर दिखाया जो कभी किसी ने किया था। हम बडे गर्व से तेरे सामने मस्तक नवाते है।

महाशय यशोदानन्द के दो पुत्र थे। बडा लडका पढ लिख कर फाजिल हो चुका था। उसी का विवाह तय हो रहा था और हम देख चुके है, बिना कुछ दहेज लिये।

आज का तिलक था। शाहजहांपुर स्वामीदयाल तिलक ले कर आने वाले थे। शहर के गणमान्य सज्जनों को निमन्त्रण दे दिये गये थे। वे लोग जमा हो गये थे। महफिल सजी7 हुई थी। एक प्रवीण सितारिया अपना कौशल दिखाकर लोगो को मुग्ध कर रहा था। दावत को सामान भी तैयार था ? मित्रगण यशोदानन्द को बधाईयां दे रहे थे।

एक महाशय बोले—तुमने तो कमाल कर दिया !

दूसरे—कमाल ! यह कहिए कि झण्डे गाड दिये। अब तक जिसे देखा मंच पर व्याख्यान झाडते ही देखा। जब काम करने का अवसर आता था तो लोग दुम लगा लेते थे।

तीसरे—कैसे-कैसे बहाने गढे जाते है—साहब हमें तो दहेज से सख्त नफरत है यह मेरे सिद्वांत के विरुद्व है, पर क्या करुं क्या, बच्चे की

अम्मीजान नहीं मानती। कोई अपने बाप पर फेंकता है, कोई और किसी खर्राट पर।

चौथे—अजी, कितने तो ऐसे बेहया है जो साफ-साफ कह देते है कि हमने लडके को शिक्षा – दीक्षा में जितना खर्च किया है, वह हमें मिलना चाहिए। मानो उन्होने यह रूपये उन्होन किसी बैंक में जमा किये थे।

पांचवें—खूब समझ रहा हूं, आप लोग मुझ पर छींटे उडा रहे है। इसमें लडके वालों का ही सारा दोष है या लडकी वालों का भी कुछ है।

पहले—लडकी वालों का क्या दोष है सिवा इसके कि वह लडकी का बाप है।

दूसरे—सारा दोष ईश्वर का जिसने लडकियां पैदा कीं । क्यों ?

पांचवे—मैं चयह नही कहता। न सारा दोष लडकी वालों का हैं, न सारा दोष लडके वालों का। दोनों की दोषी है। अगर लडकी वाला कुछ न दे तो उसे यह शिकायत करने का कोई अधिकार नही है कि डाल क्यों नही लायें, सुंदर जोडे क्यों नही लाये, बाजे-गाजे पर धूमधाम के साथ क्यों नही आये ? बताइए !

चौथे—हां, आपका यह प्रश्न गौर करने लायक है। मेरी समझ में तो ऐसी दशा में लडकें के पिता से यह शिकायत न होनी चाहिए।

पांचवें---तो यों कहिए कि दहेज की प्रथा के साथ ही डाल, गहनें और जोडो की प्रथा भी त्याज्य है। केवल दहेज को मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

यशोदानन्द----यह भी Lame excuse[1] है। मैंने दहेज नही लिया है।, लेकिन क्या डाल-गहने ने ले जाऊंगा।

पहले---महाशय आपकी बात निराली है। आप अपनी गिनती हम दुनियां वालों के साथ क्यों करते हैं ? आपका स्थान तो देवताओं के साथ है।

दूसरा----20 हजार की रकम छोड दी ? क्या बात है।

१------थोथी दलील

यशोदानन्द---मेरा तो यह निश्चय है कि हमें सदैव principles [1] पर स्थिर रहना चाहिए। principal [2] के सामने money[3] की कोई value[4] नही है। दहेज की कुप्रथा पर मैंने खुद कोई व्याख्यान नही दिया, शायद कोई नोट

तक नही लिखा। हां, conference[5] में इस प्रस्ताव को second[6] कर चुका हूं। मैं उसे तोडना भी चाहूं तो आत्मा न तोडने देगी। मैं सत्य कहता हूं, यह रूपये लूं तो मुझे इतनी मानसिक वेदना होगी कि शायद मैं इस आघात स बच ही न सकूं।

पांचवें---- अब की conference आपको सभापति न बनाये तो उसका घोर अन्याय है।

यशोदानन्द—मैंने अपनी duty [7] कर दीउसका recognition[8] हो या न हो, मुझे इसकी परवाह नही।

इतने में खबर हुई कि महाशय स्वामीदयाल आ पंहुचे । लोग उनका अभिवादन करने को तैयार हुए, उन्हें मसनद पर ला बिठाया और तिलक का संस्कार आरंम्भ हो गया। स्वामीदयाल ने एक ढाक के पत्तल पर नारियल, सुपारी, चावल पान आदि वस्तुएं वर के सामने रखीं। ब्राह्मम्णों ने मंत्र पढें हवन हुआ और वर के माथे पर तिलक लगा दिया गया। तुरन्त घर की स्त्रियो ने मंगलाचरण गाना शुरू किया। यहां पहफिल में महाशय यशोदानन्द ने एक चौकी पर खडे होकर दहेज की कुप्रथा पर व्याख्यान देना शुरू किया। व्याख्यान पहले से लिखकर तैयार कर लिया गया था। उन्होनें दहेज की ऐतिहासिक व्याख्या की थी।

पूर्वकाल में दहेज का नाम भी न थ। महाशयों ! कोई जानता ही न था कि दहेज या ठहरोनी किस चिडिया का नाम है। सत्य मानिए, कोई जानता ही न था कि ठहरौनी है क्या चीज, पशु या पक्षी, आसमान में या जमीन में, खाने में या पीने में । बादशाही जमाने में इस प्रथा की बुंनियाद पडी। हमारे युवक सेनाओं में सम्मिलित होने लगे । यह वीर लोग थें, सेनाओं में जाना गर्व समझते थे। माताएं अपने दुलारों को अपने हाथ से शस्त्रों से सजा कर रणक्षेत्र भेजती थीं। इस भाँति युवकों की संख्या कम होने लगी और लडकों का मोल-तोल शुरू हुआ। आज यह नौवत आ गयी है कि मेरी इस तुच्छ – महातुच्छ सेवा पर पत्रों में टिप्पणियां हो रही है मानों मैंने कोई असाधारण काम किया है। मै कहता हूं ; अगर आप संसार में जीवित रहना चाहते हो तो इस प्रथा क तुरन्त अन्त कीजिए।

१----सिद्वांतों । २----सिद्वांत 3-----धन । 4-----मूल्य ।

5--- सभा । 6---अनुमोदन । ७ कर्तव्य । ८----कदर ।

एक महाशय ने शंका की----क्या इसका अंत किये बिना हम सब मर जायेगें ?

यशोदानन्द-अगर ऐसा होता है तो क्या पूछना था, लोगो को दंड मिल जाता और वास्तव में ऐसा होना चाहिए। यह ईश्वर का अत्याचार है कि ऐसे लोभी, धन पर गिरने वाले, बुर्दा-फरोश, अपनी संतान का विक्रय करने वाले नराधम जीवित है। और समाज उनका तिरस्कार नही करता । मगर वह सब बुर्द-फरोश है------इत्यादि।

व्याख्यान बहुंतद लम्बा ओर हास्य भरा हुआ था। लोगों ने खूब वाह-वाह की । अपना वक्तव्य समाप्त करने के बाद उन्होने अपने छोटे लडके परमानन्द को, जिसकी अवस्था ७ वर्ष की थी, मंच पर खडा किया। उसे उन्होनें एक छोटा-सा व्याख्यान लिखकर दे रखा था। दिखाना चाहते थे कि इस कुल के छोटे बालक भी कितने कुशाग्र बुद्वि है। सभा समाजों में बालकों से व्याख्यान दिलाने की प्रथा है ही, किसी को कुतूहल न हुआ।बालक बडा सुन्दर, होनहार, हंसमुख था। मुस्कराता हुआ मंच पर आया और एक जेब से कागज निकाल कर बडे गर्व के साथ उच्च स्वर में पढने लगा------

प्रिय बंधुवर,

नमस्कार !

आपके पत्र से विदित होता है कि आपको मुझ पर विश्वास नही है। मैं ईश्वर को साक्षी करके धन आपकी सेवा में इतनी गुप्त रीति से पहुंचेगा कि किसी को लेशमात्र भी सन्देह न होगा । हां केवल एक जिज्ञासा करने की धृष्टता करता हूं। इस व्यापार को गुप्त रखने से आपको जो सम्मान और प्रतिष्ठा – लाभ होगा और मेरे निकटवर्ती में मेरी जो निंदा की जाएगी, उसके उपलक्ष्य में मेरे साथ क्या रिआयत होगी ? मेरा विनीत अनुरोध है कि २५ में से ५ निकालकर मेरे साथ न्याय किया जाय.....।

महाशय श्योदानन्द घर में मेहमानों के लिए भोजन परसने का आदेश करने गये थे। निकले तो यह बाक्य उनके कानों में पडा—२५ में से ५ मेरे साथ न्याय किया कीजिए ।‘ चेहरा फक हो गया, झपट कर लडके के पास गये, कागज उसके हाथ से छीन लिया और बौले--- नालायक, यह क्या पढ रहा है, यह तो किसी मुवक्किल का खत है जो उसने अपने मुकदमें के बारें

में लिखा था। यह तू कहां से उठा लाया, शैतान जा वह कागज ला, जो तुझे लिखकर दिया गया था।

एक महाशय-----पढने दीजिए, इस तहरीर में जो लुत्फ है, वह किसी दूसरी तकरीर में न होगा।

दूसरे---जादू वह जो सिर चढ के बोलें !

तीसरे—अब जलसा बरखास्त कीजिए । मैं तो चला।

चौथै—यहां भी चलतु हुए।

यशोदानन्द—बैठिए-बैठिए, पत्तल लगाये जा रहे है।

पहले—बेटा परमानन्द, जरा यहां तो आना, तुमने यह कागज कहां पाया ?

परमानन्द---बाबू जी ही तो लिखकर अपने मेज के अन्दर रख दिया था। मुझसे कहा था कि इसे पढना। अब नाहक मुझसे खफा रहे है।

यशोदानन्द---- वह यह कागज था कि सुअर ! मैंने तो मेज के ऊपर ही रख दिया था। तूने ड्राअर में से क्यों यह कागज निकाला ?

परमानन्द---मुझे मेज पर नही मिला ।

यशोदान्नद---तो मुझसे क्यों नही कहा, ड्राअर क्यों खोला ? देखो, आज ऐसी खबर लेता हूं कि तुम भी याद करोगे।

पहले यह आकाशवाणी है।

दूसरे----इस को लीडरी कहते है कि अपना उल्लू सीधा करो और नेकनाम भी बनो।

तीसरे----शरम आनी चाहिए। यह त्याग से मिलता है, धोखेधडी से नही।

चौथे---मिल तो गया था पर एक आंच की कसर रह गयी।

पांचवे---ईश्वर पांखंडियों को यों ही दण्ड देता है

यह कहते हुए लोग उठ खडे हुए। यशोदानन्द समझ गये कि भंडा फूट गया, अब रंग न जमेगा। बार-बार परमानन्द को कुपित नेत्रों से देखते थे और डंडा तौलकर रह जाते थे। इस शैतान ने आज जीती-जिताई बाजी खो दी, मुंह में कालिख लग गयी, सिर नीचा हो गया। गोली मार देने का काम किया है।

उधर रास्ते में मित्र-वर्ग यों टिप्पणियां करते जा रहे थे-------

एक ईश्वर ने मुंह में कैसी कालिमा लगायी कि हयादार होगा तो अब सूरत न दिखाएगा।

दूसरा--ऐसे-ऐसे धनी, मानी, विद्वान लोग ऐसे पतित हो सकते है। मुझे यही आश्चर्य है। लेना है तो खुले खजाने लो, कौन तुम्हारा हाथ पकडता है; यह क्या कि माल चुपके-चुपके उडाओं और यश भी कमाओं !

तीसरा--मक्कार का मुंह काला !

चौथा—यशोदानन्द पर दया आ रही है। बेचारी ने इतनी धूर्तता की, उस पर भी कलई खुल ही गयी। बस एक आंच की कसर रह गई।

माता का हृदय

माधवी की आंखों में सारा संसार अंधेरा हो रहा था । काई अपना मददगार दिखाई न देता था। कहीं आशा की झलक न थी। उस निर्धन घर में वह अकेली पडी रोती थी और कोई आंसू पोंछने वाला न था। उसके पति को मरे हुए २२ वर्ष हो गए थे। घर में कोई सम्पत्ति न थी। उसने न- जाने किन तकलीफों से अपने बच्चे को पाल-पोस कर बडा किया था। वही जवान बेटा आज उसकी गोद से छीन लिया गया था और छीनने वाले कौन थे ? अगर मृत्यु ने छीना होता तो वह सब्र कर लेती। मौत से किसी को द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो रहा था। इस घोर संताप की दशा में उसका जी रह-रह कर इतना विफल हो जाता कि इसी समय चलूं और उस अत्याचारी से इसका बदला लूं जिसने उस पर निष्ठुर आघात किया है। मारूं या मर जाऊं। दोनों ही में संतोष हो जाएगा।

कितना सुंदर, कितना होनहार बालक था ! यही उसके पति की निशानी, उसके जीवन का आधार उसकी अम्र भर की कमाई थी। वही लडका इस वक्त जेल मे पडा न जाने क्या-क्या तकलीफें झेल रहा होगा ! और उसका अपराध क्या था ? कुछ नही। सारा मुहल्ला उस पर जान देता था। विधालय के अध्यापक उस पर जान देते थे। अपने-बेगाने सभी तो उसे प्यार करते थे। कभी उसकी कोई शिकायत सुनने में नहीं आयी।ऐसे बालक की माता होन पर उसे बधाई देती थी। कैसा सज्जन, कैसा उदार, कैसा परमार्थी ! खुद भूखो सो रहे मगर क्या मजाल कि द्वार पर आने वाले अतिथि को रूखा जबाब दे। ऐसा बालक क्या इस योग्य था कि जेल में जाता ! उसका अपराध यही था, वह कभी-कभी सुनने वालों को अपने दुखी भाइयों का दुखडा सुनाया करता था। अत्याचार से पीडित प्राणियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता था। क्या यही उसका अपराध था?

दूसरो की सेवा करना भी अपराध है ? किसी अतिथि को आश्रय देना भी अपराध है ?

इस युवक का नाम आत्मानंद था। दुर्भाग्यवश उसमें वे सभी सद्गुण थे जो जेल का द्वार खोल देते है। वह निर्भीक था, स्पष्टवादी था, साहसी था, स्वदेश-प्रेमी था, नि:स्वार्थ था, कर्तव्यपरायण था। जेलल जाने के लिए इन्हीं

गुणो की जरूरत है। स्वाधीन प्राणियों के लिए वे गुण स्वर्ग का द्वार खोल देते है, पराधीनो के लिए नरक के ! आत्मानंद के सेवा-कार्य ने, उसकी वक्तृतताओं ने और उसके राजनीतिक लेखो ने उसे सरकारी कर्मचारियों की नजरों में चढा दिया था। सारा पुलिस-विभाग नीचे से ऊपर तक उससे सर्तक रहता था, सबकी निगाहें उस पर लगीं रहती थीं। आखिर जिले में एक भयंकर डाके ने उन्हे इच्छित अवसर प्रदान कर दिया।

आत्मानंद के घर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिले, जिन्हें पुलिस ने डाके का बीजक सिद्व किया। लगभग २० युवकों की एक टोली फांस ली गयी। आत्मानंद इसका मुखिया ठहराया गया। शहादतें हुई । इस बेकारी और गिरानी के जमाने में आत्मा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है। बेचने को और किसी के पास रह ही क्या गया है। नाम मात्र का प्रलोभन देकर अच्छी-से-अच्छी शहादतें मिल सकती है, और पुलिस के हाथ तो निकृष्ट-से- निकृष्ट गवाहियां भी देववाणी का महत्व प्राप्त कर लेती है। शहादतें मिल गयीं, महीनें-भर तक मुकदमा क्या चला एक स्वांग चलता रहा और सारे अभियुक्तों को सजाएं दे दी गयीं। आत्मानंद को सबसे कठोर दंड मिला ८ वर्ष का कठिन कारावास। माधवी रोज कचहरी जाती; एक कोने में बैठी सारी कार्यवाई देखा करती।

मानवी चरित्र कितना दुर्बल, कितना नीच है, इसका उसे अब तक अनुमान भी न हुआ था। जब आत्मानंद को सजा सुना दी गयी और वह माता को प्रणाम करके सिपाहियों के साथ चला तो माधवी मूर्छित होकर गिर पडी । दो-चार सज्जनों ने उसे एक तांगे पर बैठाकर घर तक पहुंचाया। जब से वह होश में आयी है उसके हृदय में शूल-सा उठ रहा है। किसी तरह धैर्य नही होता । उस घोर आत्म-वेदना की दशा में अब जीवन का एक लक्ष्य दिखाई देता है और वह इस अत्याचार का बदला है।

अब तक पुत्र उसके जीवन का आधार था। अब शत्रुओं से बदला लेना ही उसके जीवन का आधार होगा। जीवन में उसके लिए कोई आशा न थी। इस अत्याचार का बदला लेकर वह अपना जन्म सफल समझगी। इस अभागे नर-पिशाच बगची ने जिस तरह उसे रक्त के आसूं रॅलाये हैं उसी भांति यह भी उस रूलायेगी। नारी-हृदय कोमल है लेकिन केवल अनुकूल दशा में: जिस दशा में पुरूष दूसरों को दबाता है, स्त्री शील और विनय की देवी हो जाती है। लेकिन जिसके हाथों में अपना सर्वनाश हो गया हो उसके प्रति स्त्री की पुरूष

से कम घ्ज्ञृणा ओर क्रोध नहीं होता अंतर इतना ही है कि पुरूष शास्त्रों से काम लेता है, स्त्री कौशल से ।

रा भीगती जाती थी और माधवी उठने का नाम न लेती थी। उसका दु:ख प्रतिकार के आवेश में विलीन होता जाता था। यहां तक कि इसके सिवा उसे और किसी बात की याद ही न रही। उसने सोचा, कैसे यह काम होगा? कभी घर से नहीं निकली।वैधव्य के २२ साल इसी घर कट गये लेकिन अब निकूलूंगीं। जबरदस्ती निकलूंगी, भिखारिन बनूगीं, टहलनी बनूगी, झूठ बोलूंगी, सब कुकर्म करूंगी। सत्कर्म के लिए संसार में स्थान नहीं। ईश्वर ने निराश होकर कदाचित् इसकी ओर से मुंह फेर लिया है। जभी तो यहां ऐसे-ऐसे अत्याचार होते है। और पापियों को दडं नहीं मिलता। अब इन्हीं हाथों से उसे दंड दूगी।

2

संध्या का समय था। लखनऊ के एक सजे हुए बंगले में मित्रों की महफिल जमी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। एक तरफ आतशबाजियां रखी हुई थीं। दूसरे कमरे में मेजों पर खना चुना जा रहा था। चारों तरफ पुलिस के कर्मचारी नजर आते थें वह पुलिस के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर बगीची का बंगला है। कई दिन हुए उन्होने एक मार्के का मुकदमा जीता था।अफसरो ने खुश होकर उनकी तरक्की की दी थी। और उसी की खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा था। यहां आये दिन ऐसे उत्सव होते रहते थे। मुफ्त के गवैये मिल जाते थे, मुफ्त की अतशबाजी; फल और मेवे और मिठाईयां आधे दामों पर बाजार से आ जाती थीं। और चट दावतो हो जाती थी। दूसरों के जहों सौ लगते, वहां इनका दस से काम चल जाता था। दौड़-धूप करने को सिपाहियों की फौज थी हीं। और यह मार्के का मुकदमा क्या था? वह जिसमें निरपराध युवकों को बनावटी शहादत से जेल में ठूस दिया गया था।

गाना समाप्त होने पर लोग भोजन करने बैठें। बेगार के मजदूर और पल्लेदार जो बाजार से दावत और सजावट के सामान लाये थे, रोते या दिल में गालियां देते चले गये थे; पर एक बुढ़िया अभी तक द्वार पर बैठी हुई थी। और अन्य मजदूरों की तरह वह भूनभुना कर काम न करती थी। हुक्म पाते ही खुश-दिल मजदूर की तरह हुक्म बजा लाती थी। यह मधवी थी, जो इस

समय मजूरनी का वेष धारण करके अपना घतक संकल्प पूरा करने आयी। थी।

मेहमान चले गये। महफिल उठ गयी। दावत का समान समेट दिया गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया; लेकिन माधवी अभी तक वहीं बैठी थी।

सहसा मिस्टर बागची ने पूछा—बुड्ढी तू यहां क्यों बैठी है? तुझे कुछ खाने को मिल गया?

माधवी—हां हुजूर, मिल गया। बागची—तो जाती क्यों नहीं?

माधवी—कहां जाऊं सरकार , मेरा कोई घर-द्वार थोड़े ही है। हुकुम हो तो यहीं पडी रहूं। पाव-भर आटे की परवस्ती हो जाय हुजुर।

बगची –नौकरी करेगी?2

माधवी—क्यो न करूंगी सरकार, यही तो चाहती हूं।

बागची—लड़का खिला सकती है?

माधवी—हां हजूर, वह मेरे मन का काम है।

बगची—अच्छी बात है। तु आज ही से रह। जा घर में देख, जो काम बतायें, वहा कर।

3

एक महीना गुजर गया। माधवी इतना तन-मन से काम करती है कि सारा घर उससे खुश है। बहू जी का मीजाज बहुम ही चिड़चिड़ा है। वह दिन-भर खाट पर पड़ी रहती है और बात-बात पर नौकरों पर झल्लाया करती है। लेकिन माधवी उनकी घुड़कियों को भी सहर्ष सह लेती है। अब तक मुश्किल से कोई दाई एक सप्ताह से अधिक ठहरी थी। माधवी का कलेजा है कि जली-कटी सुनकर भी मुख पर मैल नहीं आने देती।

मिस्टर बागची के कई लड़के हो चुके थे, पर यही सबसे छोटा बच्चा बच रहा था। बच्चे पैदा तो हृष्ट-पृष्ट होते, किन्तु जन्म लेते ही उन्हे एक –न एक रोग लग जाता था और कोई दो-चार महीनें, कोई साल भर जी कर चल देता था। मां-बाप दोनों इस शिशु पर प्राण देते थे। उसे जरा जुकाम भी हो तो दोनो विकल हो जाते। स्त्री-पुरूष दोनो शिक्षित थे, पर बच्चे की रक्षा के लिए टोना-टोटका , दुआता-बीच, जन्तर-मंतर एक से भी उन्हें इनकार न था।

माधवी से यह बालक इतना हिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसकी गोद से न उतरता। वह कहीं एक क्षण के लिए चली जाती तो रो-रो कर दुनिया सिर पर उठा लेता। वह सुलाती तो सोता, वह दूध पिलाती तो

पिता, वह खिलाती तो खेलता, उसी को वह अपनी माता समझता। माधवी के सिवा उसके लिए संसार में कोई अपना न था। बाप को तो वह दिन-भर में केवल दो-नार बार देखता और समझता यह कोई परदेशी आदमी है। मां आलस्य और कमजारी के मारे गोद में लेकर टहल न सकती थी। उसे वह अपनी रक्षा का भार संभालने के योग्य न समझता था, और नौकर-चाकर उसे गोद में ले लेते तो इतनी वेदर्दी से कि उसके कोमल अंगो मे पीड़ा होने लगती थी। कोई उसे ऊपर उछाल देता था, यहां तक कि अबोध शिशु का कलेजा मुंह को आ जाता था। उन सबों से वह डरता था। केवल माधवी थी जो उसके स्वभाव को समझती थी। वह जानती थी कि कब क्या करने से बालक प्रसन्न होगा। इसलिए बालक को भी उससे प्रेम था।

माधवी ने समझाया था, यहां कंचन बरसता होगा; लेकिन उसे देखकर कितना विस्मय हुआ कि बडी मुश्किल से महीने का खर्च पूरा पडता है। नौकरों से एक-एक पैसे का हिसाब लिया जाता था और बहुधा आवश्यक वस्तुएं भी टाल दी जाती थीं। एक दिन माधवी ने कहा—बच्चे के लिए कोई तेज गाड़ी क्यों नहीं मंगवा देतीं। गोद में उसकी बाढ़ मारी जाती है।

मिसेज बागजी ने कुठिंत होकर कहा—कहां से मगवां दूं? कम से कम ५०-६० रुपयं में आयेगी। इतने रुपये कहां है?

माधवी—मलकिन, आप भी ऐसा कहती है!

मिसेज बगची—झूठ नहीं कहती। बाबू जी की पहली स्त्री से पांच लड़कियां और है। सब इस समय इलाहाबाद के एक स्कूल में पढ रही हैं। बड़ी की उम्र १५-१६ वर्ष से कम न होगी। आधा वेतन तो उधार ही चला जाता है। फिर उनकी शादी की भी तो फिक्र है। पांचो के विवाह में कम-से-कम २५ हजार लगेंगे। इतने रूपये कहां से आयेगें। मै चिंता के मारे मरी जाती हूं। मुझे कोई दूसरी बीमारी नहीं है केवल चिंता का रोग है।

माधवी—घूस भी तो मिलती है।

मिसेज बागची—बूढी, ऐसी कमाई में बरकत नहीं होती। यही क्यों सच पूछो तो इसी घूस ने हमारी यह दुर्गती कर रखी है। क्या जाने औरों को कैसे हजम होती है। यहां तो जब ऐसे रूपये आते है तो कोई-न-कोई नुकसान भी अवश्य हो जाता है। एक आता है तो दो लेकर जाता है। बार-बार मना करती हूं, हराम की कौड़ी घर मे न लाया करो, लेकिन मेरी कौन सुनता है।

बात यह थी कि माधवी को बालक से स्नेह होता जाता था। उसके अमंगल की कल्पना भी वह न कर सकती थी। वह अब उसी की नींद सोती और उसी की नींद जागती थी। अपने सर्वनाश की बात याद करके एक क्षण के लिए बागची पर क्रोध तो हो आता था और घाव फिर हरा हो जाता था; पर मन पर कुत्सित भावों का आधिपत्य न था। घाव भर रहा था, केवल ठेस लगने से दर्द हो जाता था। उसमें स्वंय टीस या जलन न थी। इस परिवार पर अब उसे दया आती थी। सोचती, बेचारे यह छीन-झपट न करें तो कैसे गुजर हो। लड़कियों का विवाह कहां से करेगें! स्त्री को जब देखो बीमार ही रहती है। उन पर बाबू जी को एक बोतल शराब भी रोज चाहिए। यह लोग स्वयं अभागे है। जिसके घर में ५-५क्वारी कन्याएं हों, बालक हो-हो कर मर जाते हों, घरनी दा बीमार रहती हो, स्वामी शराब का तली हो, उस पर तो यों ही ईश्वर का कोप है। इनसे तो मैं अभागिन ही अच्छी!

४

दुर्बल बलकों के लिए बरसात बुरी बला है। कभी खांसी है, कभी ज्वर, कभी दस्त। जब हवा में ही शीत भरी हो तो कोई कहां तक बचाये। माधवी एक दिन आपने घर चली गयी थी। बच्चा रोने लगा तो मां ने एक नौकर को दिया, इसे बाहर बहला ला। नौकर ने बाहर ले जाकर हरी-हरी घास पर बैठा दिया,। पानी बरस कर निकल गया था। भूमि गीली हो रही थी। कहीं-कहीं पानी भी जमा हो गया था। बालक को पानी में छपके लगाने से ज्यादा प्यारा और कौन खेल हो सकता है। खूब प्रेम से उमंग-उमंग कर पानी में लोटने लगां नौकर बैठा और आदमियों के साथ गप-शप करता घंटो गुजर गये। बच्चे ने खूब सर्दी खायी। घर आया तो उसकी नाक बह रही थीं रात को माधवी ने आकर देखा तो बच्चा खांस रहा था। आधी रात के करीब उसके गले से खुरखुर की आवाज निकलने लगी। माधवी का कलेजा सन से हो गया। स्वामिनी को जगाकर बोली—देखो तो बच्चे को क्या हो गया है। क्या सर्दी-वर्दी तो नहीं लग गयी। हां, सर्दी ही मालूम होती है।

स्वामिनी हकबका कर उठ बैठी और बालक की खुरखराहट सुनी तो पांव तलेजमीन निकल गयीं यह भंयकर आवाज उसने कई बार सुनी थी और उसे खूब पहचानती थी। व्यग्र होकर बोली—जरा आग जलाओ। थोड़ा-सा तंग आ गयी। आज कहार जरा देर के लिए बाहर ले गया था, उसी ने सर्दी में छोड़ दिया होगा।

सारी रात दोंनो बालक को सेंकती रहीं। किसी तरह सवेरा हुआ। मिस्टर बागची को खबर मिली तो सीधे डाक्टर के यहां दौड़े। खैरियत इतनी थी कि जल्द एहतियात की गयी। तीन दिन में अच्छा हो गया; लेकिन इतना दुर्बल हो गया था कि उसे देखकर डर लगता था। सच पूछों तो माधवी की तपस्या ने बालक को बचायां। माता-पिता सो जाता, किंतु माधवी की आंखों में नींद न थी। खना-पीना तक भूल गयी। देवताओं की मनौतियां करती थी, बच्चे की बलाएं लेती थी, बिल्कुल पागल हो गयी थी, यह वही माधवी है जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आयी थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी।विष पिलाने आयी थी, सुधा पिला रही थी। मनुष्य में देवता कितना प्रबल है!

प्रात:काल का समय था। मिस्टर बागची शिशु के झूले के पास बैठे हुए थे। स्त्री के सिर में पीड़ा हो रही थी। वहीं चारपाई पर लेटी हुई थी और माधवी समीप बैठी बच्चे के लिए दुध गरम कर रही थी। सहसा बागची ने कहा—बूढी, हम जब तक जियेंगे तुम्हारा यश गयेंगे। तुमने बच्चे को जिला लियां

स्त्री—यह देवी बनकर हमारा कष्ट निवारण करने के लिए आ गयी। यह न होती तो न जाने क्या होता। बूढी, तुमसे मेरी एक विनती है। यों तो मरना जीना प्रारब्ध के हाथ है, लेकिन अपना-अपना पौरा भी बड़ी चीज है। मैं अभागिनी हूं। अबकी तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से बच्चा संभल गया। मुझे डर लग रहा है कि ईश्वर इसे हमारे हाथ से छीन ने ले। सच कहतीं हूं बूढी, मुझे इसका गोद में लेते डर लगता हैं। इसे तुम आज से अपना बच्चा समझो। तुम्हारा होकर शायद बच जाय। हम अभागे हैं, हमारा होकर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो जाआ। तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहां चाहे ले जाओ, तुम्हारी गोंद मे देर मुझे फिर कोई चिंता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो, मै तो राक्षसी हूं।

माधवी—बहू जी, भगवान् सब कुशल करेगें, क्यों जी इतना छोटा करती हो?

मिस्टर बागची—नहीं-नहीं बूढी माता, इसमें कोई हरज नहीं है। मै मस्तिष्क से तो इन बांतो को ढकोसला ही समझता हूं; लेकिन हृदय से इन्हें दूर नहीं कर सकता। मुझे स्वयं मेरी माता जीने एक धाबिन के हाथ बेच दिया था। मेरे तीन भाई मर चुके थे। मै जो बच गया तो मां-बाप ने समझा

बेचने से ही इसकी जान बच गयी। तुम इस शिशु को पालो-पासो। इसे अपना पुत्र समझो। खर्च हम बराबर देते रहेंगें। इसकी कोई चिंता मत करना। कभी –कभी जब हमारा जी चाहेगा, आकर देख लिया करेगें। हमें विश्वास है कि तुम इसकी रक्षा हम लोंगों से कहीं अच्छी तरह कर सकती हो। मैं कुकर्मी हूं। जिस पेशे में हूं, उसमें कुकर्म किये बगैर काम नहीं चल सकता। झूठी शहादतें बनानी ही पड़ती है, निरपराधों को फंसाना ही पड़ता है। आत्मा इतनी दुर्बल हो गयी है कि प्रलोभन में पड़ ही जाता हूं। जानता ही हूं कि बुराई का फल बुरा ही होता है; पर परिस्थिति से मजबूर हूं। अगर न करूं तो आज नालायक बनाकर निकाल दिया जाऊं। अग्रेज हजारों भूलें करें, कोई नहीं पूछता। हिनदूस्तानी एक भूल भी कर बैठे तो सारे अफसर उसके सिर हो जाते है। हिंदुस्तानियत को दोष मिटाने केलिए कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ती है जिनका अग्रेंज के दिल में कभी ख्याल ही नहीं पैदा हो सकता। तो बोलो, स्वीकार करती हो?

माधवी गद्गद् होकर बोली—बाबू जी, आपकी इच्छा है तो मुझसे भी जो कुछ बन पडेगा, आपकी सेवा कर दूंगीं भगवान् बालक को अमर करें, मेरी तो उनसे यही विनती है।

माधवी को ऐसा मालूम हो रहा था कि स्वर्ग के द्वार सामने खुले हैं और स्वर्ग की देवियां अंचल फैला-फैला कर आशीर्वाद दे रही हैं, मानो उसके अंतस्तल में प्रकाश की लहरें-सी उठ रहीं है। स्नेहमय सेवा में कि कितनी शांति थी।

बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था। माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिल्ला पड़ी। बालक की देह ठंडी हो गयी थी और मुंह पर वह पीलापन आ गया था जिसे देखकर कलेजा हिल जाता है, कंठ से आह निकल आती है और आंखों से आसूं बहने लगते हैं। जिसने इसे एक बारा देखा है फिर कभी नहीं भूल सकता। माधवी ने शिशु को गोंद से चिपटा लिया, हालाकिं नीचे उतार दोना चाहिए था।

कुहराम मच गया। मां बच्चे को गले से लगाये रोती थी; पर उसे जमीन पर न सुलाती थी। क्या बातें हो रही रही थीं और क्या हो गया। मौत को धोखा दोने में आन्नद आता है। वह उस वक्त कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब संभल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर-भर खुशियां मनाने लगता है, सबकों

विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निठुर लीला है।

आशाओं के बाग लगाने में हम कितने कुशल हैं। यहां हम रक्त के बीज बोकर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौधों को सींचकर शीतल छांह में बैठते हैं। हां, मंद बुद्धि।

दिन भर मातम होता रहा; बाप रोता था, मां तड़पती थी और माधवी बारी-बारी से दोनो को समझाती थी।यदि अपने प्राण देकर वह बालक को जिला सकती तो इस समया अपना धन्य भाग समझती। वह अहित का संकल्प करके यहां आयी थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गयी और उसे खुशी से फूला न समाना चाहिए था, उस उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी जो अपने पुत्र की जेल यात्रा में हुई थी। रूलाने आयी थी और खुद राती जा रहीं थी। माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें दया की ही सुगंध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएं भी उस स्वच्छ निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं।

परीक्षा

नादिरशाह की सेना में दिल्ली के कत्लेआम कर रखा है। गलियों मे खून की नदियां बह रही हैं। चारो तरफ हाहाकार मचा हुआ है। बाजार बंद है। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बंद किये जान की खैर मना रहे है। किसी की जान सलामत नहीं है। कहीं घरों में आग लगी हुई है, कहीं बाजार लुट रहा है; कोई किसी की फरियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलो से निकाली जा रही है और उनकी बेहुरती की जाती है। ईरानी सिपाहियों की रक्त पिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव हृदया की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समया नादिर शाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोग-विलास की केंद्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ के सामानों से रईसों के भवन भरे रहते थे। स्त्रियों को बनाव-सिगांर के सिवा कोई काम न था। पुरूषों को सुख-भोग के सिवा और कोई चिन्ता न थी। राजीनति का स्थान शेरो-शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रन्तो से धन खिंच-खिंच कर दिल्ली आता था। और पानी की भांति बहाया जाता था। वेश्याओं की चादीं थी। कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरो और बुलबुलों की पलियां ठनती थीं। सारा नगर विलास –निद्रा में मग्न था। नादिरशाह शाही महल में पहुंचा तो वहां का सामान देखकर उसकी आंखें खुल गयीं। उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था। उसका समसत जीवन रणभूमि में ही कटा था। भोग विलास का उसे चसका न लगा था। कहां रण-क्षेत्र के कष्ट और कहां यह सुख-साम्राज्य। जिधर आंख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी।

संध्या हो गयी थी। नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपनी पसंद की सचीजों को बटोरता हुआ दीवाने-खास में आकर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहां से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सबहथियार रख दिये और महल के दरागा को बुलाकर हुक्म दिया—मै शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूं। तुम इसी वक्त उनको सुंदर वस्त्राभूषणों से सजाकर मेरे सामने लाओं खबरदार, जरा भी देर न हो! मै कोई उज्र या इनकार नहीं सुन सकता।

दारोगा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये। वह महिलएं जिन पर सूर्य की दृटि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिस में आयेंगी! नाचने का तो कहना ही क्या! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच! दिल्ली को खून से रंग कर भी तेरा चित्त शांत नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी जबान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था! सिर झुकाकर आदाग लाया और आकर रनिवास में सब वेगमों को नादीरशाही हुक्म सुना दिया; उसके साथ ही यह इत्त्ला भी दे दी कि जरा भी ताम्मुल न हो , नादिरशाह कोई उज्र या हिला न सुनेगा! शाही खानदोन पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी; पर अस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गयीं। सारेरनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गयीं। सैकडो हृदयों से इस सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया; पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो। यद्यपी इनमें कितनी ही बेगमों की नसों में राजपूतानियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था; पर इंद्रियलिप्सा ने जौहर की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख-भोग की लालसा आत्म सम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाया सोचने की मुहलत न थी। एक-एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललपाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आंखों से आसूं जारी थे, अश्रु-सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक-व्यथित हृदयां पर सुगंध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गुंथतीं थी, कोई मांगो में मोतियों पिरोती थी। एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो इश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कर सके।

एक घंटा भी न गुजरने पाया था कि बेगमात पूरे-के-पूरे, आभूषणों से जगमगातीं, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजातीं, सुगंध की लपटें उड़ाती, छमछम करती हुई दीवाने-खास में आकर दनादिरशाह के सामने खड़ी हो गयीं।

३

नादिर शाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षण में उसकी आंखें झपकने लगीं। उसने एक अगड़ाई ली और करवट बदल ली। जरा देर में उसके खर्राटों की अवाजें सुनायी देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह सोता रहा और बेगमें ज्यों की त्यों सिर निचा किये दीवार के चित्रों की भांति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलाएं जो ढीठ थीं, घूघंट की ओट से नादिरशाह को देख भी रहीं थीं और आपस में दबी जबान में कानाफूसी कर रही थीं—कैसा भंयकर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत आंखें है! कितना भारी शरीर है! आदमी काहे को है, देव है।

सहसा नादिरशाह की आंखें खुल गई परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ो की भांति एक दूसरे से मिल गयीं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने-गाने को कहेगा, तब कैसे होगा! खुदा इस जालिम से समझे! मगर नाचा तो न जायेगा। चाहे जान ही क्यों न जाय। इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जायगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला—ऐ खुदा की बंदियो, मैने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ-ब-हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की औरतों में गैरत नहीं रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है।

देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ गैरत बाकी है या नहीं। इसलिए मैने तुम्हें यहां बुलाया था। मै तुमहारी बेहुरमली नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बंदा नहीं हूं , वरना आज भेड़ो के गल्ले चाहता होता। न इतना हवसपरस्त हूं, वरना आज फारस में सरोद और सितार की तानें सुनाता होता, जिसका मजा मै हिंदुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूं। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सचा मलाल हो रहा है कि तुममें गैरत का जौहर बाकी न रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों तले कुचल देतीं? जब तुम यहां आ गयीं तो मैने तुम्हें एक और मौका दिया। मैने नींद का बहाना किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुममें से कोई खुदा की बंदी इस कटार को

उठाकर मेरे जिगर में चुभा देती। मै कलामेपाक की कसम खाकर कहता हूं कि तुममें से किसी को कटार पर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती, मै उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता! पर अफसोस है कि आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहां ऐसी नहीं निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़ने पर हाथ उठाती! अब यह सल्लतनत जिंदा नहीं रह सकती। इसकी हसती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जाएगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी।

तेंतर

आखिर वही हुआ जिसकी आंशका थी; जिसकी चिंता में घर के सभी लोग और विषेशत: प्रसूता पड़ी हुई थी। तीनो पुत्रो के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में सूख गयी, पिता बाहर आंगन में सूख गये, और की वृद्ध माता सौर द्वार पर सूख गयी। अनर्थ, महाअनर्थ भगवान् ही कुशल करें तो हो? यह पुत्री नहीं राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में जाना था! आना था तो कुछ दिन पहले क्यों न आयी। भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।

पिता का नाम था पंड़ित दामोदरदत्त। शिक्षित आदमी थे। शिक्षा-विभाग ही में नौकर भी थे; मगर इस संस्कार को कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था, कि तीसरे बेटे की पीठ पर होने वाली कन्या अभागिनी होती है, या पिता को लेती है या पिता को, या अपने कों। उनकी वृद्धा माता लगी नवजात कन्या को पानी पी-पी कर कोसने, कलमुंही है, कलमुही! न जाने क्या करने आयी हैं यहां। किसी बांझ के घर जाती तो उसके दिन फिर जाते!

दामोदरदत्त दिल में तो घबराये हुए थे, पर माता को समझाने लगे—अम्मा तेंतर-बेंतर कुछ नहीं, भगवान् की इच्छा होती है, वही होता है। ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल ही होगा; गानेवालियों को बुला लो, नहीं लोग कहेंगे, तीन बेटे हुए तो कैसे फूली फिरती थीं, एक बेटी हो गयी तो घर में कुहराम मच गया।

माता—अरे बेटा, तुम क्या जानो इन बातों को, मेरे सिर तो बीत चुकी हैं, प्राण नहीं में समाया हुआ हैं तेंतर ही के जन्म से तुम्हारे दादा का देहांत हुआ। तभी से तेंतर का नाम सुनते ही मेरा कलेजा कांप उठता है।

दामोदर—इस कष्ट के निवारण का भी कोई उपाय होगा?

माता—उपाय बताने को तो बहुत हैं, पंडित जी से पूछो तो कोई-न-कोई उपाय बता देंगे; पर इससे कुछ होता नहीं। मैंने कौन-से अनुष्ठान नहीं किये, पर पंडित जी की तो मुट्ठियां गरम हुईं, यहां जो सिर पर पड़ना था, वह पड़ ही गया। अब टके के पंडित रह गये हैं, जजमान मरे या जिये उनकी बला से, उनकी दक्षिणा मिलनी चाहिए। (धीरे से) लकड़ी दुबली-पतली भी नहीं है।

तीनों लकड़ों से हृष्ट-पुष्ट है। बड़ी-बड़ी आंखे है, पतले-पतले लाल-लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा-चिट्टा रंग हैं, लम्बी-सी नाक। कलमुही नहलाते समय रोयी भी नहीं, टुकुरटुकुर ताकती रही, यह सब लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही है।

दामोदरदत्त के तीनों लड़के सांवले थे, कुछ विशेष रूपवान भी न थे। लड़की के रूप का बखान सुनकर उनका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बोले—अम्मा जी, तुम भगवान् का नाम लेकर गानेवालियों को बुला भेजों, गाना-बजाना होने दो। भाग्य में जो कुछ हैं, वह तो होगा ही।

माता-जी तो हुलसता नहीं, करूं क्या?

दामोदर—गाना न होने से कष्ट का निवारण तो होगा नहीं, कि हो जाएगा? अगर इतने सस्ते जान छूटे तो न कराओ गान।

माता—बुलाये लेती हूं बेटा, जो कुछ होना था वह तो हो गया। इतने में दाई ने सौर में से पुकार कर कहा—बहूजी कहती हैं गानावाना कराने का काम नहीं है।

माता—भला उनसे कहो चुप बैठी रहे, बाहर निकलकर मनमानी करेंगी, बारह ही दिन हैं बहुत दिन नहीं है; बहुत इतराती फिरती थी—यह न करूंगी, वह न करूंगी, देवी क्या हैं, मरदों की बातें सुनकर वही रट लगाने लगी थीं, तो अब चुपके से बैठती क्यो नहीं। मैं तो तेंतर को अशुभ नहीं मानतीं, और सब बातों में मेमों की बराबरी करती हैं तो इस बात में भी करे।

यह कहकर माता जी ने नाइन को भेजा कि जाकर गानेवालियों को बुला ला, पड़ोस में भी कहती जाना।

सवेरा होते ही बड़ा लड़का सो कर उठा और आंखे मलता हुआ जाकर दादी से पूछने लगा—बड़ी अम्मा, कल अम्मा को क्या हुआ?

माता—लड़की तो हुई है।

बालक खुशी से उछलकर बोला—ओ-हो-हो पैजनियां पहन-पहन कर छुन-छुन चलेगी, जरा मुझे दिखा दो दादी जी?

माता—अरे क्या सौर में जायगा, पागल हो गया है क्या?

लड़के की उत्सुकता न मानीं। सौर के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और बोला—अम्मा जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।

दाई ने कहा—बच्ची अभी सोती है।

बालक—जरा दिखा दो, गोद में लेकर।

दाई ने कन्या उसे दिखा दी तो वहां से दौड़ता हुआ अपने छोटे भाइयें के पास पहुंचा और उन्हें जगा-जगा कर खुशखबरी सुनायी।

एक बोला—नन्हीं-सी होगी।

बड़ा—बिलकुल नन्हीं सी! जैसी बड़ी गुड़िया! ऐसी गोरी है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूंगा।

सबसे छोटा बोला—अमको बी दिका दो।

तीनों मिलकर लड़की को देखने आये और वहां से बगलें बजाते उछलते-कूदते बाहर आये।

बड़ा—देखा कैसी है!

मंझला—कैसे आंखें बंद किये पड़ी थी।

छोटा—हमें हमें तो देना।

बड़ा—खूब द्वार पर बारात आयेगी, हाथी, घोड़े, बाजे आतशबाजी। मंझला और छोटा ऐसे मग्न हो रहे थे मानो वह मनोहर दृश्य आंखो के सामने है, उनके सरल नेत्र मनोल्लास से चमक रहे थे।

मंझला बोला—फुलवारियां भी होंगी।

छोटा—अम बी पूल लेंगे!

२

छट्ठी भी हुई, बरही भी हुई, गाना-बजाना, खाना-पिलाना-देना-दिलाना सब-कुछ हुआ; पर रस्म पूरी करने के लिए, दिल से नहीं, खुशी से नहीं। लड़की दिन-दिन दुर्बल और अस्वस्थ होती जाती थी। मां उसे दोनों वक्त अफीम खिला देती और बालिका दिन और रात को नशे में बेहोश पड़ी रहती। जरा भी नशा उतरता तो भूख से विकल होकर रोने लगती! मां कुछ ऊपरी दूध पिलाकर अफीम खिला देती। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब की उसकी छाती में दूध नहीं उतरा। यों भी उसे दूध दे से उतरता था; पर लड़कों की बेर उसे नाना प्रकार की दूधवर्द्धक औषधियां खिलायी जाती, बार-बार शिशु को छाती से लगाया जाता, यहां तक कि दूध उतर ही आता था; पर अब की यह आयोजनाएं न की गयीं। फूल-सी बच्ची कुम्हलाती जाती थी। मां तो कभी उसकी ओर ताकती भी न थी। हां, नाइन कभी चुटकियां बजाकर चुमकारती तो शिशु के मुख पर ऐसी दयनीय, ऐसी करूण बेदना अंकित दिखायी देती कि वह आंखें पोंछती हुई चली जाती थी। बहु से कुछ कहने-

सुनने का साहस न पड़ता। बड़ा लड़का सिद्धु बार-बार कहता—अम्मा, बच्ची को दो तो बाहर से खेला लाऊं। पर मां उसे झिड़क देती थी।

तीन-चार महीने हो गये। दामोदरदत्त रात को पानी पीने उठे तो देखा कि बालिका जाग रही है। सामने ताख पर मीठे तेल का दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बांधे उसी दीपक की ओर देखती थी, और अपना अंगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ-पैर फेंकती थी, बस अंगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानों उसमें सुधा-रस भरा हुआ है। वह माता के स्तनों की ओर मुंह भी नहीं फेरती थी, मानो उसका उन पर कोई अधिकार है नहीं, उसके लिए वहां कोई आशा नहीं। बाबू साहब को उस पर दया आयी। इस बेचारी का मेरे घर जन्म लेने में क्या दोष है? मुझ पर या इसकी माता पर कुछ भी पड़े, उसमें इसका क्या अपराध है? हम कितनी निर्दयता कर रहे हैं कि कुछ कल्पित अनिष्ट के कारण इसका इतना तिरस्कार कर रहे है। मानों कि कुछ अमंगल हो भी जाय तो क्या उसके भय से इसके प्राण ले लिये जायेंगे। अगर अपराधी है तो मेरा प्रारब्ध है। इस नन्हें-से बच्चे के प्रति हमारी कठोरता क्या ईश्वर को अच्छी लगती होगी? उन्होनें उसे गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगे। लड़की को कदाचित् पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ-पैर उछाल कर 'गूं-गूं' करने लगी और दीपक की ओर हाथ फैलाने लगी। उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गयी।

प्रातःकाल दामोदरदत्त ने लड़की को गोद में उठा लिया और बाहर लाये। स्त्री ने बार-बार कहा—उसे पड़ी रहने दो। ऐसी कौन-सी बड़ी सुन्दर है, अभागिन रात-दिन तो प्राण खाती रहती हैं, मर भी नहीं जाती कि जान छूट जाय; किंतु दामोदरदत्त ने न माना। उसे बाहर लाये और अपने बच्चों के साथ बैठकर खेलाने लगे। उनके मकान के सामने थोड़ी-सी जमीन पड़ी हुई थी। पड़ोस के किसी आदमी की एकबकरी उसमें आकर चरा करती थी। इस समय भी वह चर रही थी। बाबू साहब ने बड़े लड़के से कहा—सिद्धू जरा उस बकरी को पकड़ो, तो इसे दूध पिलायें, शायद भूखी है बेचारी! देखो, तुम्हारी नन्हीं-सी बहन है न? इसे रोज हवा में खेलाया करो।

सिद्धु को दिल्लगी हाथ आयी। उसका छोटा भाई भी दौड़ा। दोनो ने घेर कर बकरी को पकड़ा और उसका कान पकड़े हुए सामने लाये। पिता ने शिशु का मुंह बकरी थन में लगा दिया। लड़की चुबलाने लगी और एक क्षण में

दूध की धार उसके मुंह में जाने लगी, मानो टिमटिमाते दीपक में तेल पड़ जाये। लड़की का मुंह खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी। वह पिता की गोद में हुमक-हुमक कर खेलने लगी। लड़कों ने भी उसे खूब नचाया-कुदाया।

उस दिन से सिद्धु को मनोंरजन का एक नया विषय मिल गया। बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसनले में चिड़िया का बच्चा देख पायं तो बार-बार वहां जायेंगे। देखेंगें कि माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है। बच्चा कैसे चोंच खोलता हैं। कैसे दाना लेते समय परों को फड़फड़ाकर कर चें-चें करता है। आपस में बड़े गम्भीर भाव से उसकी चरचा करेंगे, उपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे। सिद्धू ताक में लगा देता, कभी दिन में दो-दो तीन-तीन बा पिलाता। बकरी को भूसी चोकर खिलाकार ऐसा परचा लिया कि वह स्वयं चोकर के लोभ से चली आती और दूध देकर चली जाती। इस भांति कोई एक महीना गुजर गया, लड़की हृष्ट-पुष्ट हो गयी, मुख पुष्प के समान विकसित हो गया। आंखें जग उठीं, शिशुकाल की सरल आभा मन को हरने लगी।

माता उसको देख-देख कर चकित होती थी। किसी से कुछ कह तो न सकती; पर दिल में आशंका होती थी कि अब वह मरने की नहीं, हमीं लोगों के सिर जायेगी। कदाचित् ईश्वर इसकी रक्षा कर रहे हैं, जभी तो दिन-दिन निखरती आती है, नहीं, अब तक ईश्वर के घर पहुंच गयी होती।

३

मगर दादी माता से कहीं जयादा चिंतित थी। उसे भ्रम होने लगा कि वह बच्चे को खूब दूध पिला रही हैं, सांप को पाल रही है। शिशु की ओर आंख उठाकर भी न देखती। यहां तक कि एक दिन कह बैठी—लड़की का बड़ा छोह करती हो? हां भाई, मां हो कि नहीं, तुम न छोह करोगी, तो करेगा कौन?

'अम्मा जी, ईश्वर जानते हैं जो मैं इसे दूध पिलाती होऊं?'

'अरे तो मैं मना थोड़े ही करती हूं, मुझे क्या गरज पड़ी है कि मुफ्त में अपने ऊपर पाप लूं, कुछ मेरे सिर तो जायेगी नहीं।'

'अब आपको विश्वास ही न आये तो क्या करें?'

'मुझे पागल समझती हो, वह हवा पी-पी कर ऐसी हो रही है?'

'भगवान् जाने अम्मा, मुझे तो अचरज होता है।'

बहू ने बहुत निर्दोषिता जतायी; किंतु वृद्धा सास को विश्वास न आया। उसने समझा, वह मेरी शंका को निर्मूल समझती है, मानों मुझे इस बच्ची से कोई बैर है। उसके मन में यह भाव अंकुरित होने लगा कि इसे कुछ हो जोये तब यह समझे कि मैं झूठ नहीं कहती थी। वह जिन प्राणियों को अपने प्राणों से भी अधिक समझती थीं। उन्हीं लोगों की अमंगल कामना करने लगी, केवल इसलिए कि मेरी शंकाएं सत्य हा जायं। वह यह तो नहीं चाहती थी कि कोई मर जाय; पर इतना अवश्य चाहती थी कि किसी के बहाने से मैं चेता दूं कि देखा, तुमने मेरा कहा न माना, यह उसी का फल है। उधर सास की ओर से ज्यो-ज्यों यह द्वेष-भाव प्रकट होता था, बहू का कन्या के प्रति स्नेह बढ़ता था। ईश्वर से मनाती रहती थी कि किसी भांति एक साल कुशल से कट जाता तो इनसे पूछती। कुछ लड़की का भोला-भाला चेहरा, कुछ अपने पति का प्रेम-वात्सल्य देखकर भी उसे प्रोत्साहन मिलता था। विचित्र दशा हो रही थी, न दिल खोलकर प्यार ही कर सकती थी, न सम्पूर्ण रीति से निर्दय होते ही बनता था। न हंसते बनता था न रोते।

इस भांति दो महीने और गुजर गये और कोई अनिष्ट न हुआ। तब तो वृद्धा सासव के पेट में चूहें दौड़ने लगे। बहू को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं जाता कि मेरी शंका की मर्यादा रह जाये। पुत्र भी किसी दिन पैरगाड़ी पर से नहीं गिर पड़ता, न बहू के मैके ही से किसी के स्वर्गवास की सुनावनी आती है। एक दिन दामोदरदत्त ने खुले तौर पर कह भी दिया कि अम्मा, यह सब ढकोसला है, तेंतेर लड़कियां क्या दुनिया में होती ही नहीं, तो सब के सब मां-बाप मर ही जाते है? अंत में उसने अपनी शंकाओं को यथार्थ सिद्ध करने की एक तरकीब सोच निकाली। एक दिन दामोदरदत्त स्कूल से आये तो देखा कि अम्मा जी खाट पर अचेत पड़ी हुई हैं, स्त्री अंगीठी में आग रखे उनकी छाती सेंक रही हैं और कोठरी के द्वार और खिड़कियां बंद है। घबरा कर कहा —अम्मा जी, क्या दशा है?

स्त्री—दोपहर ही से कलेजे में एक शूल उठ रहा है, बेचारी बहुत तड़फ रही है।

दामोदर—मैं जाकर डॉक्टर साहब को बुला लाऊं न.? देर करने से शायद रोग बढ़ जाय। अम्मा जी, अम्मा जी कैसी तबियत है?

माता ने आंखे खोलीं और कराहते हुए बोली—बेटा तुम आ गये?

अब न बचूंगी, हाय भगवान्, अब न बचूंगी। जैसे कोई कलेजे में बरछी चुभा रहा हो। ऐसी पीड़ा कभी न हुई थी। इतनी उम्र बीत गयी, ऐसी पीड़ा कभी न हुई।

स्त्री—वह कलमुही छोकरी न जाने किस मनहूस घड़ी में पैदा हुई।

सास—बेटा, सब भगवान करते है, यह बेचारी क्या जाने! देखो मैं मर जाऊं तो उसे कश्ट मत देना। अच्छा हुआ मेरे सिर आयीं किसी कके सिर तो जाती ही, मेरे ही सिर सही। हाय भगवान, अब न बचूंगी।

दामोदर—जाकर डॉक्टर बुला लाऊं? अभ्भी लौटा आता हूं।

माता जी को केवल अपनी बात की मर्यादा निभानी थी, रूपये न खच्र कराने थे, बोली—नहीं बेटा, डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगे? अरे, वह कोई ईश्धर है। डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगें? अरे, वह कोई ईश्धर है। डॉक्टर अमृत पिला देगा, दस-बीस वह भी ले जायेगा! डॉक्टर-वैद्य से कुछ न होगा। बेटा, तुम कपड़े उतारो, मेरे पास बैठकर भागवत पढ़ो। अब न बचूंगी। अब न बचूंगी, हाय राम!

दामोदर—तेंतर बुरी चीज है। मैं समझता था कि ढकोसला है।

स्त्री—इसी से मैं उसे कभी नहीं लगाती थी।

माता—बेटा, बच्चों को आराम से रखना, भगवान तुम लोगों को सुखी रखें। अच्छा हुआ मेरे ही सिर गयी, तुम लोगों के सामने मेरा परलोक हो जायेगा। कहीं किसी दूसरे के सिर जाती तो क्या होता राम! भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। हाय! हाय!!

दामोदरदत्त को निश्चय हो गया कि अब अम्मा न बचेंगी। बड़ा दु:ख हुआ। उनके मन की बात होती तो वह मां के बदले तेंतर को न स्वीकार करते। जिस जननी ने जन्म दिया, नाना प्रकार के कष्ट झेलकर उनका पालन-पोषण किया, अकाल वैधव्य को प्राप्त होकर भी उनकी शिक्षा का प्रबंध किया, उसके सामने एक दुधमुहीं बच्ची का कया मूल्य था, जिसके हाथ का एक गिलास पानी भी वह न जानते थे। शोकातुर हो कपड़े उतारे और मां के सिरहाने बैठकर भागवत की कथा सुनाने लगे।

रात को बहू भोजन बनाने चली तो सास से बोली—अम्मा जी, तुम्हारे लिए थोड़ा सा साबूदाना छोड़ दूं?

माता ने व्यंग्य करके कहा—बेटी, अन्य बिना न मारो, भला साबूदाना मुझसे खया जायेगा; जाओं, थोड़ी पूरियां छान लो। पड़े-पड़े जो कुछ इच्छा

होगी, खा लूंगी, कचौरियां भी बना लेना। मरती हूं तो भोजन को तरस-तरस क्यों मरूं। थोड़ी मलाई भी मंगवा लेना, चौक की हो। फिर थोड़े खाने आऊंगी बेटी। थोड़े-से केले मंगवा लेना, कलेजे के दर्द में केले खाने से आराम होता है।

भोजन के समय पीड़ा शांत हो गयी; लेकिन आध घंटे बाद फिर जोर से होने लगी। आधी रात के समय कहीं जाकर उनकी आंख लगी। एक सप्ताह तक उनकी यही दशा रही, दिन-भर पड़ी कराहा करतीं बस भोजन के समय जरा वेदना कम हो जाती। दामोदरदत्त सिरहाने बैठे पंखा झलते और मातृवियोग के आगत शोक से रोते। घर की महरी ने मुहल्ले-भर में एक खबर फैला दी; पड़ोसिनें देखने आयीं, तो सारा इलजाम बालिका के सिर गया।

एक ने कहा—यह तो कहो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गयी; नहीं तो तेंतर मां-बाप दो में से एक को लेकर तभी शांत होती है। दैव न करे कि किसी के घर तेंतर का जन्म हो।

दूसरी बोली—मेरे तो तेंतर का नाम सुनते ही रोयें खड़े हो जाते है। भगवान् बांझ रखे पर तेंतर का जन्म न दें।

एक सप्ताह के बाद वृद्धा का कष्ट निवारण हुआ, मरने में कोई कसर न थी, वह तो कहों पुरूखाओं का पुण्य-प्रताप था। ब्राह्मणों को गोदान दिया गया। दुर्गा-पाठ हुआ, तब कहीं जाके संकट कटा।

नैराश्य

बाज आदमी अपनी स्त्री से इसलिए नाराज रहते हैं कि उसके लड़कियां ही क्यों होती हैं, लड़के क्यों नहीं होते। जानते हैं कि इनमें स्त्री को दोष नहीं है, या है तो उतना ही जितना मेरा, फिर भी जब देखिए स्त्री से रूठे रहते हैं, उसे अभागिनी कहते हैं और सदैव उसका दिल दुखाया करते हैं। निरुपमा उन्ही अभागिनी स्त्रियों में थी और घमंडीलाल त्रिपाठी उन्हीं अत्याचारी पुरुषों में। निरुपमा के तीन बेटियां लगातार हुई थीं और वह सारे घर की निगाहों से गिर गयी थी। सास-ससुर की अप्रसन्नता की तो उसे विशेष चिंता न थी, वह पुराने जमाने के लोग थे, जब लड़कियां गरदन का बोझ और पूर्वजन्मों का पाप समझी जाती थीं। हां, उसे दु:ख अपने पतिदेव की अप्रसन्नता का था जो पढ़े-लिखे आदमी होकर भी उसे जली-कटी सुनाते रहते थे। प्यार करना तो दूर रहा, निरुपमा से सीधे मुंह बात न करते, कई-कई दिनों तक घर ही में न आते और आते तो कुछ इस तरह खिंचे-तने हुए रहते कि निरुपमा थर-थर कांपती रहती थी, कहीं गरज न उठें। घर में धन का अभाव न था; पर निरुपमा को कभी यह साहस न होता था कि किसी सामान्य वस्तु की इच्छा भी प्रकट कर सके। वह समझती थी, में यथार्थ में अभागिनी हूं, नहीं तो भगवान् मेरी कोख में लड़कियां ही रचते। पति की एक मृदु मुस्कान के लिए, एक मीठी बात के लिए उसका हृदय तड़प कर रह जाता था। यहां तक कि वह अपनी लड़कियों को प्यार करते हुए सकुचाती थी कि लोग कहेंगे, पीतल की नथ पर इतना गुमान करती है। जब त्रिपाठी जी के घर में आने का समय होता तो किसी-न-किसी बहाने से वह लड़कियों को उनकी आंखों से दूर कर देती थी। सबसे बड़ी विपत्ति यह थी कि त्रिपाठी जी ने धमकी दी थी कि अब की कन्या हुई तो घर छोड़कर निकल जाऊंगा, इस नरक में क्षण-भर न ठहरूंगा। निरुपमा को यह चिंता और भी खाये जाती थी।

वह मंगल का व्रत रखती थी, रविवार, निर्जला एकादसी और न जाने कितने व्रत करती थी। स्नान-पूजा तो नित्य का नियम था; पर किसी अनुष्ठान से मनोकामना न पूरी होती थी। नित्य अवहेलना, तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान सहते-सहते उसका चित्त संसार से विरक्त होता जाता था। जहां कान

एक मीठी बात के लिए, आंखें एक प्रेम-दृष्टि के लिए, हृदय एक आलिंगन के लिए तरस कर रह जाये, घर में अपनी कोई बात न पूछे, वहां जीवन से क्यों न अरुचि हो जाय?

एक दिन घोर निराशा की दशा में उसने अपनी बड़ी भावज को एक पत्र लिखा। एक-एक अक्षर से असह्य वेदना टपक रही थी। भावज ने उत्तर दिया—तुम्हारे भैया जल्द तुम्हें विदा कराने जायेंगे। यहां आजकल एक सच्चे महात्मा आये हुए हैं जिनका आर्शीवाद कभी निष्फल नहीं जाता। यहां कई संतानहीन स्त्रियां उनक आर्शीवाद से पुत्रवती हो गयीं। पूर्ण आशा है कि तुम्हें भी उनका आर्शीवाद कल्याणकारी होगा।

निरुपमा ने यह पत्र पति को दिखाया। त्रिपाठी जी उदासीन भाव से बोले—सृष्टि-रचना महात्माओं के हाथ का काम नहीं, ईश्वर का काम है।

निरुपमा—हां, लेकिन महात्माओं में भी तो कुछ सिद्धि होती है।

घमंडीलाल—हां होती है, पर ऐसे महात्माओं के दर्शन दुर्लभ हैं।

निरुपमा—मैं तो इस महात्मा के दर्शन करुंगी।

घमंडीलाल—चली जाना।

निरुपमा—जब बांझिनों के लड़के हुए तो मैं क्या उनसे भी गयी-गुजरी हूं।

घमंडीलाल—कह तो दिया भाई चली जाना। यह करके भी देख लो। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, पुत्र का मुख देखना हमारे भाग्य में ही नहीं है।

2

कई दिन बाद निरुपमा अपने भाई के साथ मैके गयी। तीनों पुत्रियां भी साथ थीं। भाभी ने उन्हें प्रेम से गले लगाकर कहा, तुम्हारे घर के आदमी बड़े निर्दयी हैं। ऐसी गुलाब –फूलों की-सी लड़कियां पाकर भी तकदीर को रोते हैं। ये तुम्हें भारी हों तो मुझे दे दो। जब ननद और भावज भोजन करके लेटीं तो निरुपमा ने पूछा—वह महात्मा कहां रहते हैं?

भावज—ऐसी जल्दी क्या है, बता दूंगी।

निरुपमा—है नगीच ही न?

भावज—बहुत नगीच। जब कहोगी, उन्हें बुला दूंगी।

निरुपमा—तो क्या तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हैं?

भावज—दोनों वक्त यहीं भोजन करते हैं। यहीं रहते हैं।

निरुपमा—जब घर ही में वैद्य तो मरिये क्यों? आज मुझे उनके दर्शन करा देना।

भावज—भेंट क्या दोगी?

निरुपमा—मैं किस लायक हूं?

भावज—अपनी सबसे छोटी लड़की दे देना।

निरुपमा—चलो, गाली देती हो।

भावज—अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा—चलो, गाली देती हो।

भावज—अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा—भाभी, मुझसे ऐसी हंसी करोगी तो मैं चली आऊंगी।

भावज—वह महात्मा बड़े रसिया हैं।

निरुपमा—तो चूल्हे में जायं। कोई दुष्ट होगा।

भावज—उनका आर्शीवाद तो इसी शर्त पर मिलेगा। वह और कोई भेंट स्वीकार ही नहीं करते।

निरुपमा—तुम तो यों बातें कर रही हो मानो उनकी प्रतिनिधि हो।

भावज—हां, वह यह सब विषय मेरे ही द्वारा तय किया करते हैं। मैं भेंट लेती हूं। मैं ही आर्शीवाद देती हूं, मैं ही उनके हितार्थ भोजन कर लेती हूं।

निरुपमा—तो यह कहो कि तुमने मुझे बुलाने के लिए यह हीला निकाला है।

भावज—नहीं, उनके साथ ही तुम्हें कुछ ऐसे गुर दूंगी जिससे तुम अपने घर आराम से रहा।

इसके बाद दोनों सखियों में कानाफूसी होने लगी। जब भावज चुप हुई तो निरुपमा बोली—और जो कहीं फिर क्या ही हुई तो?

भावज—तो क्या? कुछ दिन तो शांति और सुख से जीवन कटेगा। यह दिन तो कोई लौटा न लेगा। पुत्र हुआ तो कहना ही क्या, पुत्री हुई तो फिर कोई नयी युक्ति निकाली जायेगी। तुम्हारे घर के जैसे अक्ल के दुश्मनों के साथ ऐसी ही चालें चलने से गुजारा है।

निरुपमा—मुझे तो संकोच मालूम होता है।

भावज—त्रिपाठी जी को दो-चार दिन में पत्र लिख देना कि महात्मा जी के दर्शन हुए और उन्होंने मुझे वरदान दिया है। ईश्वर ने चाहा तो उसी दिन

से तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा होने लगी। घमंडी दौड़े हुए आयेंगे और तम्हारे ऊपर प्राण निछावर करेंगे। कम-से-कम साल भर तो चैन की वंशी बजाना। इसके बाद देखी जायेगी।

निरुपमा—पति से कपट करूं तो पाप न लगेगा?

भावज—ऐसे स्वार्थियों से कपट करना पुण्य है।

3

तीन चार महीने के बाद निरुपमा अपने घर आयी। घमंडीलाल उसे विदा कराने गये थे। सलहज ने महात्मा जी का रंग और भी चोखा कर दिया। बोली—ऐसा तो किसी को देखा नहीं कि इस महात्मा जी ने वरदान दिया हो और वह पूरा न हो गया हो। हां, जिसका भाग्य फूट जाये उसे कोई क्या कर सकता है।

घमंडीलाल प्रत्यक्ष तो वरदान और आर्शीवाद की उपेक्षा ही करते रहे, इन बातों पर विश्वास करना आजकल संकोचजनक मालूम होता ह; पर उनके दिल पर असर जरूर हुआ।

निरुपमा की खातिरदारियां होनी शुरू हुईं। जब वह गर्भवती हुई तो सबके दिलों में नयी-नयी आशाएं हिलोरें लेने लगी। सास जो उठते गाली और बैठते व्यंग्य से बातें करती थीं अब उसे पान की तरह फेरती—बेटी, तुम रहने दो, मैं ही रसोई बना लूंगी, तुम्हारा सिर दुखने लगेगा। कभी निरुपमा कलसे का पानी या चारपाई उठाने लगती तो सास दौड़ती—बहू,रहने दो, मैं आती हूं, तुम कोई भारी चीज मत उठाया करा। लड़कियों की बात और होती है, उन पर किसी बात का असर नहीं होता, लड़के तो गर्भ ही में मान करने लगते हैं। अब निरुपमा के लिए दूध का उठौना किया गया, जिससे बालक पुष्ट और गोरा हो। घमंडी वस्त्राभूषणों पर उतारू हो गये। हर महीने एक-न-एक नयी चीज लाते। निरुपमा का जीवन इतना सुखमय कभी न था। उस समय भी नहीं जब नवेली वधू थी।

महीने गुजरने लगे। निरूपमा को अनुभूत लक्षणों से विदित होने लगा कि यह कन्या ही है; पर वह इस भेद को गुप्त रखती थी। सोचती, सावन की धूप है, इसका क्या भरोसा जितनी चीज धूप में सुखानी हो सुखा लो, फिर तो घटा छायेगी ही। बात-बात पर बिगड़ती। वह कभी इतनी मानशीला न थी। पर घर में कोई चूं तक न करता कि कहीं बहू का दिल न दुखे, नहीं बालक को कष्ट होगा। कभी-कभी निरुपमा केवल घरवालों को जलाने के लिए

अनुष्ठान करती, उसे उन्हें जलाने में मजा आता था। वह सोचती, तुम स्वार्थियों को जितना जलाऊं उतना अच्छा! तुम मेरा आदर इसलिए करते हो न कि मैं बच्च जनूंगी जो तुम्हारे कुल का नाम चलायेगा। मैं कुछ नहीं हूं, बालक ही सब-कुछ है। मेरा अपना कोई महत्व नहीं, जो कुछ है वह बालक के नाते। यह मेरे पति हैं! पहले इन्हें मुझसे कितना प्रेम था, तब इतने संसार-लोलुप न हुए थे। अब इनका प्रेम केवल स्वार्थ का स्वांग है। मैं भी पशु हूं जिसे दूध के लिए चारा-पानी दिया जाता है। खैर, यही सही, इस वक्त तो तुम मेरे काबू में आये हो! जितने गहने बन सकें बनवा लूं, इन्हें तो छीन न लोगे।

इस तरह दस महीने पूरे हो गये। निरुपमा की दोनों ननदें ससुराल से बुलायी गयीं। बच्चे के लिए पहले ही सोने के गहने बनवा लिये गये, दूध के लिए एक सुन्दर दुधार गाय मोल ले ली गयी, घमंडीलाल उसे हवा खिलाने को एक छोटी-सी सेजगाड़ी लाये। जिस दिन निरूपमा को प्रसव-वेदना होने लगी, द्वार पर पंडित जी मुहूर्त देखने के लिए बुलाये गये। एक मीरशिकार बंदूक छोड़ने को बुलाया गया, गायनें मंगल-गान के लिए बटोर ली गयीं। घर से तिल-तिल कर खबर मंगायी जाती थी, क्या हुआ? लेडी डॉक्टर भी बुलायी गयीं। बाजे वाले हुक्म के इंतजार में बैठे थे। पामर भी अपनी सारंगी लिये ‘ जच्चा मान करे नंदलाल सों’ की तान सुनाने को तैयार बैठा था। सारी तैयारियां; सारी आशाएं, सारा उत्साह समारोह एक ही शब्द पर अवलम्बि था। ज्यों-ज्यों देर होती थी लोगों में उत्सुकता बढ़ती जाती थी। घमंडीलाल अपने मनोभावों को छिपाने के लिए एक समाचार –पत्र देख रहे थे, मानो उन्हें लड़का या लड़की दोनों ही बराबर हैं। मगर उनके बूढे पिता जी इतने सावधान न थे। उनकी पीछें खिली जाती थीं, हंस-हंस कर सबसे बात कर रहे थे और पैसों की एक थैली को बार-बार उछालते थे।

मीरशिकार ने कहा—मालिक से अबकी पगड़ी दुपट्टा लूंगा।

पिताजी ने खिलकर कहा—अबे कितनी पगड़ियां लेगा? इतनी बेभाव की दूंगा कि सर के बाल गंजे हो जायेंगे।

पामर बोला—सरकार अब की कुछ जीविका लूं।

पिताजी खिलकर बोले—अबे कितनी खायेगा; खिला-खिला कर पेट फाड़ दूंगा।

सहसा महरी घर में से निकली। कुछ घबरायी-सी थी। वह अभी कुछ बोलने भी न पायी थी कि मीरशिकार ने बन्दूक फैर कर ही तो दी। बन्दूक छूटनी थी कि रोशन चौकी की तान भी छिड़ गयी, पामर भी कमर कसकर नाचने को खड़ा हो गया।

महरी—अरे तुम सब के सब भंग खा गये हो गया?

मीरशिकार—क्या हुआ?

महरी—हुआ क्या लड़की ही तो फिर हुई है?

पिता जी—लड़की हुई है?

यह कहते-कहते वह कमर थामकर बैठ गये मानो वज्र गिर पड़ा। घमंडीलाल कमरे से निकल आये और बोले—जाकर लेडी डाक्टर से तो पूछ। अच्छी तरह देख न ले। देखा सुना, चल खड़ी हुई।

महरी—बाबूजी, मैंने तो आंखों देखा है!

घमंडीलाल—कन्या ही है?

पिता—हमारी तकदीर ही ऐसी है बेटा! जाओ रे सब के सब! तुम सभी के भाग्य में कुछ पाना न लिखा था तो कहां से पाते। भाग जाओ। सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, सारी तैयारी मिट्टी में मिल गयी।

घमंडीलाल—इस महात्मा से पूछना चाहिए। मैं आज डाक से जरा बचा की खबर लेता हूं।

पिता—धूर्त है, धूर्त!

घमंडीलाल—मैं उनकी सारी धूर्तता निकाल दूंगा। मारे डंडों के खोपड़ी न तोड़ दूं तो कहिएगा। चांडाल कहीं का! उसके कारण मेरे सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया। यह सेजगाड़ी, यह गाय, यह पलना, यह सोने के गहने किसके सिर पटकूं। ऐसे ही उसने कितनों ही को ठगा होगा। एक दफा बचा ही मरम्मत हो जाती तो ठीक हो जाते।

पिता जी—बेटा, उसका दोष नहीं, अपने भाग्य का दोष है।

घमंडीलाल—उसने क्यों कहा ऐसा नहीं होगा। औरतों से इस पाखंड के लिए कितने ही रुपये ऐंठे होंगे। वह सब उन्हें उगलना पड़ेगा, नहीं तो पुलिस में रपट कर दूंगा। कानून में पाखंड का भी तो दंड है। मैं पहले ही चौंका था कि हो न हो पाखंडी है; लेकिन मेरी सलहज ने धोखा दिया, नहीं तो मैं ऐसे पाजियों के पंजे में कब आने वाला था। एक ही सुअर है।

पिताजी—बेटा सब्र करो। ईश्वर को जो कुछ मंजूर था, वह हुआ। लड़का-लड़की दोनों ही ईश्वर की देन है, जहां तीन हैं वहां एक और सही।

पिता और पुत्र में तो यह बातें होती रहीं। पामर, मीरशिकार आदि ने अपने-अपने डंडे संभाले और अपनी राह चले। घर में मातम-सा छा गया, लेडी डॉक्टर भी विदा कर दी गयी, सौर में जच्चा और दाई के सिवा कोई न रहा। वृद्धा माता तो इतनी हताश हुई कि उसी वक्त अटवास-खटवास लेकर पड़ रहीं।

जब बच्चे की बरही हो गयी तो घमंडीलाल स्त्री के पास गये और सरोष भाव से बोले—फिर लड़की हो गयी!

निरुपमा—क्या करूं, मेरा क्या बस?

घमंडीलाल—उस पापी धूर्त ने बड़ा चकमा दिया।

निरुपमा—अब क्या कहें, मेरे भाग्य ही में न होगा, नहीं तो वहां कितनी ही औरतें बाबाजी को रात-दिन घेरे रहती थीं। वह किसी से कुछ लेते तो कहती कि धूर्त हैं, कसम ले लो जो मैंने एक कौड़ी भी उन्हें दी हो।

घमंडीलाल—उसने लिया या न लिया, यहां तो दिवाला निकल गया। मालूम हो गया तकदीर में पुत्र नहीं लिखा है। कुल का नाम डूबना ही है तो क्या आज डूबा, क्या दस साल बाद डूबा। अब कहीं चला जाऊंगा, गृहस्थी में कौन-सा सुख रखा है।

वह बहुत देर तक खड़े-खड़े अपने भाग्य को रोते रहे; पर निरुपमा ने सिर तक न उठाया।

निरुपमा के सिर फिर वही विपत्ति आ पड़ी, फिर वही ताने, वही अपमान, वही अनादर, वही छीछालेदार, किसी को चिंता न रहती कि खाती-पीती है या नहीं, अच्छी है या बीमार, दुखी है या सुखी। घमंडीलाल यद्यपि कहीं न गये, पर निरूपमा को यही धमकी प्राय: नित्य ही मिलती रहती थी। कई महीने यों ही गुजर गये तो निरूपमा ने फिर भावज को लिखा कि तुमने और भी मुझे विपत्ति में डाल दिया। इससे तो पहले ही भली थी। अब तो काई बात भी नहीं पूछता कि मरती है या जीती है। अगर यही दशा रही तो स्वामी जी चाहे संन्यास लें या न लें, लेकिन मैं संसार को अवश्य त्याग दूंगी।

4

भाभी य पत्र पाकर परिस्थिति समझ गयी। अबकी उसने निरुपमा को बुलाया नहीं, जानती थी कि लोग विदा ही न करेंगे, पति को लेकर स्वयं आ पहुंची। उसका नाम सुकेशी था। बड़ी मिलनसार, चतुर विनोदशील स्त्री थी। आते ही आते निरुपमा की गोद में कन्या देखी तो बोली —अरे यह क्या?

सास—भाग्य है और क्या?

सुकेशी—भाग्य कैसा? इसने महात्मा जी की बातें भुला दी होंगी। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि वह मुंह से जो कुछ कह दें, वह न हो। क्यों जी, तुमने मंगल का व्रत रखा?

निरुपमा—बराबर, एक व्रत भी न छोड़ा।

सुकेशी—पांच ब्राह्मणों को मंगल के दिन भोजन कराती रही?

निरुपमा—यह तो उन्होंने नहीं कहा था।

सुकेशी—तुम्हारा सिर, मुझे खूब याद है, मेरे सामने उन्होंने बहुत जोर देकर कहा था। तुमने सोचा होगा, ब्राह्मणों को भोजन कराने से क्या होता है। यह न समझा कि कोई अनुष्ठान सफल नहीं होता जब तक विधिवत् उसका पालन न किया जाये।

सास—इसने कभी इसकी चर्चा ही नहीं की;नहीं;पांच क्या दस ब्राह्मणों को जिमा देती। तुम्हारे धर्म से कुछ कमी नहीं है।

सुकेशी—कुछ नहीं, भूल हो गयी और क्या। रानी, बेटे का मुंह यों देखना नसीब नहीं होता। बड़े-बड़े जप-तप करने पड़ते हैं, तुम मंगल के व्रत ही से घबरा गयीं?

सास—अभागिनी है और क्या?

घमंडीलाल—ऐसी कौन-सी बड़ी बातें थीं, जो याद न रहीं? वह हम लोगों को जलाना चाहती है।

सास—वही तो कहूं कि महात्मा की बात कैसे निष्फल हुई। यहां सात बरसों ते 'तुलसी माई' को दिया चढ़ाया, जब जा के बच्चे का जन्म हुआ।

घमंडीलाल—इन्होंने समझा था दाल-भात का कौर है!

सुकेशी—खैर, अब जो हुआ सो हुआ कल मंगल है, फिर व्रत रखो और अब की सात ब्राह्मणों को जिमाओ, देखें, कैसे महात्मा जी की बात नहीं पूरी होती।

घमंडीलाल-व्यर्थ है, इनके किये कुछ न होगा।

सुकेशी—बाबूजी, आप विद्वान समझदार होकर इतना दिल छोटा करते हैं। अभी आपककी उम्र क्या है। कितने पुत्र लीजिएगा? नाकों दम न हो जाये तो कहिएगा।

सास—बेटी, दूध-पूत से भी किसी का मन भरा है।

सुकेशी—ईश्वर ने चाहा तो आप लोगों का मन भर जायेगा। मेरा तो भर गया।

घमंडीलाल—सुनती हो महारानी, अबकी कोई गोलमोल मत करना। अपनी भाभी से सब ब्योरा अच्छी तरह पूछ लेना।

सुकेशी—आप निश्चिंत रहें, मैं याद करा दूंगी; क्या भोजन करना होगा, कैसे रहना होगा कैसे स्नान करना होगा, यह सब लिखा दूंगी और अम्मा जी, आज से अठारह मास बाद आपसे कोई भारी इनाम लूंगी।

सुकेशी एक सप्ताह यहां रही और निरुपमा को खूब सिखा-पढ़ा कर चली गयी।

5

निरुपमा का एकबाल फिर चमका, घमंडीलाल अबकी इतने आश्वासित से रानी हुई, सास फिर उसे पान की भांति फेरने लगी, लोग उसका मुंह जोहने लगे।

दिन गुजरने लगे, निरुपमा कभी कहती अम्मां जी, आज मैंने स्वप्न देखा कि वृद्ध स्त्री ने आकर मुझे पुकारा और एक नारियल देकर बोली, 'यह तुम्हें दिये जाती हूं; कभी कहती,'अम्मां जी, अबकी न जाने क्यों मेरे दिल में बड़ी-बड़ी उमंगें पैदा हो रही हैं, जी चाहता है खूब गाना सुनूं, नदी में खूब स्नान करूं, हरदम नशा-सा छाया रहता है। सास सुनकर मुस्कराती और कहती—बहू ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा चुपके-चुपके माजूर मंगाकर खाती और अपने असल नेत्रों से ताकते हुए घमंडीलाल से पूछती-मेरी आंखें लाल हैं क्या?

घमंडीलाल खुश होकर कहते—मालूम होता है, नशा चढ़ा हुआ है। ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा को सुगंधों से कभी इतना प्रेम न था, फूलों के गजरों पर अब वह जान देती थी।

घमंडीलाल अब नित्य सोते समय उसे महाभारत की वीर कथाएं पढ़कर सुनाते, कभी गुरु गोविंदसिंह कीर्ति का वर्णन करते। अभिमन्यु की

कथा से निरुपमा को बड़ा प्रेम था। पिता अपने आने वाले पुत्र को वीर-संस्कारों से परिपूरित कर देना चाहता था।

एक दिन निरुपमा ने पति से कहा—नाम क्या रखोगे?

घमंडीलाल—यह तो तुमने खूब सोचा। मुझे तो इसका ध्यान ही न रहा। ऐसा नाम होना चाहिए जिससे शौर्य और तेज टपके। सोचो कोई नाम।

दोनों प्राणी नामों की व्याख्या करने लगे। जोरावरलाल से लेकर हरिश्चन्द्र तक सभी नाम गिनाये गये, पर उस असामान्य बालक के लिए कोई नाम न मिला। अंत में पति ने कहा तेगबहादुर कैसा नाम है।

निरुपमा—बस-बस, यही नाम मुझे पसन्द है?

घमंडी लाल—नाम ही तो सब कुछ है। दमड़ी, छकौड़ी, घुरहू, कतवारू, जिसके नाम देखे उसे भी 'यथा नाम तथा गुण' ही पाया। हमारे बच्चे का नाम होगा तेगबहादुर।

6

प्रसव-काल आ पहुंचा। निरुपमा को मालूम था कि क्या होने वाली है; लेकिन बाहर मंगलाचरण का पूरा सामान था। अबकी किसी को लेशमात्र भी संदेह न था। नाच, गाने का प्रबंध भी किया गया था। एक शामियाना खड़ा किया गया था और मित्रगण उसमें बैठे खुश-गप्पियां कर रहे थे। हलवाई कड़ाई से पूरियां और मिठाइयां निकाल रहा था। कई बोरे अनाज के रखे हुए थे कि शुभ समाचार पाते ही भिक्षुकों को बांटे जायें। एक क्षण का भी विलम्ब न हो, इसलिए बोरों के मुंह खोल दिये गये थे।

लेकिन निरुपमा का दिल प्रतिक्षण बैठा जाता था। अब क्या होगा? तीन साल किसी तरह कौशल से कट गये और मजे में कट गये, लेकिन अब विपत्ति सिर पर मंडरा रही है। हाय! निरपराध होने पर भी यही दंड! अगर भगवान् की इच्छा है कि मेरे गर्भ से कोई पुत्र न जन्म ले तो मेरा क्या दोष! लेकिन कौन सुनता है। मैं ही अभागिनी हूं मैं ही त्याज्य हूं मैं ही कलमुंही हूं इसीलिए न कि परवश हूं! क्या होगा? अभी एक क्षण में यह सारा आनंदात्सव शोक में डूब जायेगा, मुझ पर बौछारें पड़ने लगेंगी, भीतर से बाहर तक मुझी को कोसेंगे, सास-ससुर का भय नहीं, लेकिन स्वामी जी शायद फिर मेरा मुंह न देखें, शायद निराश होकर घर-बार त्याग दें। चारों तरफ अमंगल ही अमंगल हैं मैं अपने घर की, अपनी संतान की दुर्दशा देखने के लिए क्यों जीवित हूं। कौशल बहुत हो चुका, अब उससे कोई आशा नहीं। मेरे दिल में

कैसे-कैसे अरमान थे। अपनी प्यारी बच्चियों का लालन-पालन करती, उन्हें ब्याहती, उनके बच्चों को देखकर सुखी होती। पर आह! यह सब अरमान झाक में मिले जाते हैं। भगवान्! तुम्ही अब इनके पिता हो, तुम्हीं इनके रक्षक हो। मैं तो अब जाती हूं।

लेडी डॉक्टर ने कहा—वेल! फिर लड़की है।

भीतर-बाहर कुहराम मच गया, पिट्टस पड़ गयी। घमंडीलाल ने कहा—जहन्नुम में जाये ऐसी जिंदगी, मौत भी नहीं आ जाती!

उनके पिता भी बोले—अभागिनी है, वज्र अभागिनी!

भिक्षुकों ने कहा—रोओ अपनी तकदीर को हम कोई दूसरा द्वार देखते हैं।

अभी यह शोकादगार शांत न होने पाया था कि डॉक्टर ने कहा मां का हाल अच्छा नहीं है। वह अब नहीं बच सकती। उसका दिल बंद हो गया है।